व्यावहारिक अध्यात्म के शिल्पी

संत कबीर

जन्म-जन्म की किसने देखी ? जब इसी जन्म में भवसागर तरने की कोई तैयारी न की तो अगले जन्मों की क्या आशा की जाए ? जो जन्म मिला है उसका उपयोग तो अपने हाथ में है, अगले की राम जाने। मुझे तो इसी जन्म में बेड़ा पार करना है। अगला जन्म कौन जाने कहाँ, किस योनि में मिले ? कबीर सोचता गया।

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं और गुरु के बिना ज्ञान नहीं। योग्य गुरु मिले तो कुछ बात बने। कबीर ने आगे सोचा कि स्वामी रामानंद सा ज्ञानी, भक्त और वेद-वेदांत का पंडित कौन मिलेगा, वे पूरे महात्मा हैं। जीवन-मृत्यु, लोक-परलोक, ज्ञान-विज्ञान सब उन्हें हस्तगत हैं। वे मानवता की जीती-जागती मूर्ति हैं। किसी का दुःख नहीं देख सकते। कोई किसी जाति-वर्ग का क्यों न हो, दुखी देखकर उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण ही तो समाज में देवता मानकर पूजे जाते हैं। उनकी शरण मिले तो बात बने।

यह बात बने कैसे ? मैं नीच जाति का जो हूँ। जुलाहा हूँ। मुझे अपना शिष्य बनाने को तैयार जो नहीं होंगे। ऐसी उनके शास्त्र की आज्ञा है। शास्त्र के वचनों पर चलना वे अपना परम धर्म मानते हैं, लेकिन यदि श्रद्धा सच्ची है, मन में ज्ञान की पूरी जिज्ञासा है तो एक दिन उन्हें मेरा निवेदन मानना ही पड़ेगा। मुझे उनकी शरण मिलेगी। प्रयत्न करना मेरा काम है आगे राम की इच्छा! कबीर जब-तब यों ही बैठा सोचा करता था।

कबीर के पिता का नाम नीरू था। वह जुलाहा थे। कपड़ा बुना करते थे। उससे जो कुछ मिल जाता था उसी से गुजर-बसर चलती

थी। गरीबी का यह हाल कि न पेट भर खाना मिल पाता था और न तन भर कपड़ा। ऐसे निर्धन माँ-बाप का बेटा कबीर अपने समय का एक महान समाजसुधारक हुआ। समाज में व्याप्त कुरीतियों और धर्म के नाम पर चलते हुए आडंबर और पाखंडों को देखकर कबीर को बड़ा दुःख होता था। उन दिनों भारत पर सिकंदर लोदी का शासन था। वह बड़ा अत्याचारी बादशाह था। तलवार के बल पर हिंदुओं को मुसलमान बनाना वह अपने धर्म की एक बड़ी सेवा समझता था। उसकी इस अनीति से प्रोत्साहित होकर काजियों, मुल्लाओं और मौलवियों की बन पड़ी थी। ये सभी गुर्गे बादशाह को खुश करने के लिए गरीब और निर्बल हिंदुओं को बहकाकर या डरा-धमकाकर मुसलमान बनाते और पुरस्कार पाते रहते थे। कबीर की मनुष्यता इस अत्याचार को नहीं देख पाती थी। उसने इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई और सैकड़ों हिंदुओं को मुसलमान बनने से रोका। इसके लिए उसे सिकंदर लोदी के सामने पेश होना पड़ा, पर कबीर के सत्य, उनकी निर्भीकता, साहस और दृढ़ता के सम्मुख उसकी एक न चली और कबीर को मान्यता देनी पड़ी। इस सत्कर्म के लिए उन्हें मुसलमानों का कोपभाजन बनना पड़ा, काफिर और धर्मविरोधी कहलाना पड़ा। मुसलमान समाज ने उनका न केवल बहिष्कार ही किया बल्कि तरह-तरह की यातनाएँ भी दीं।

मुसलमानों ने उन्हें हिंदू माना और हिंदुओं ने उन्हें मुसलमान कहकर, जुलाहा मानकर नीच और अस्पृश्य माना, अपने पास बिठाने और छूने तक में परहेज किया। राम का नाम लेने पर मारा और तरह-तरह से सताया, धमकाया लेकिन कबीर ने न कट्टर पंथी मुसलमानों की परवाह की और न ढोंगी तथा आडंबरी हिंदुओं की। उनने उन सबकी कुरीतियों तथा अज्ञानपूर्ण मान्यताओं की आलोचना की और सबको प्रकाश-पथ पर लाने का प्रयत्न किया। उनने ही हिंदू और मुसलमान दोनों समाजों के नीच कहे जाने वाले लोगों को गले लगाया। उन्हें भक्ति का मार्ग बतलाया और आत्म-अस्तित्व का बोध कराया।

कबीर अभी बालक ही था। दस-ग्यारह साल की उम्र थी। वह गली, बाजारों में मस्ती से राम नाम का भजन करता फिरता था। लोग उसे बाल साधु समझकर आटा-दाल, रोटी, पैसा देना चाहते थे, पर वह सबसे कह देता मैं न भिक्षुक हूँ और न साधु। मैं तो राम नाम का प्रचारक हूँ। राम का सेवक हूँ। उनके नाम को बेचने वाला नहीं। लोग कबीर को देखते ही घेर लेते और श्रद्धा से उनकी बातें और भजन सुनते थे।

एकबार काशी के प्रमुख पंडा काशीनाथ से कबीर की मुठभेड़ हो गई। कबीर अपने स्वभावानुसार एक गली में खड़े लोगों को राम नाम की महिमा बतला रहे थे और संड-मुसंड बने संतों-महंतों तथा पंडा-पुजारियों का स्वरूप बतला रहे थे तभी काशीनाथ अपने एक नौकर के साथ उधर से निकले। लड़के की बातें, धर्म पर उसकी टिप्पणी और सबसे बड़ी बात, उसकी लोकप्रियता देखकर जल-भुन गया। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर परिचय पूछा। कबीर ने बड़े गर्व से बताया कि वह नीरू जुलाहे का लड़का कबीर है।

काशीनाथ का पारा आसमान पर चढ़ गया उसने कहा—"एक नीच जुलाहे का लड़का होकर तू किस अधिकार से धर्म संबंधी बातें लोगों को बतलाता है? मुसलमान होकर राम नाम की महिमा बखानता है। बड़ा पंडित बनता है नीच कहीं का।"

कबीर ने तुरंत निर्भयता के साथ कहा—"महाराज जुबान सँभालकर बात करो। नीच वह होता है जो दूसरों को नीच कहता और मानता है। भगवान ने सबको बराबर बनाया है। उसकी दृष्टि में कोई ऊँच-नीच नहीं है। राम नाम की महिमा कहने का किसी के पास ठेका नहीं है। जो राम का भक्त है, वह उसके नाम का जाप कर सकता है और महिमा का बखान भी। राम का नाम लेने का अधिकार मुझे मेरी आत्मा ने दिया है। मेरे रोम-रोम में राम का निवास है। मैं उसका भक्त हूँ, प्रेमी हूँ। न मैं मुसलमान हूँ और न हिंदू। मैं तो परमात्मा का बनाया एक इनसान हूँ। आज से न मुझे मुसलमान कहना और न हिंदू मानना, समझे महाराज!"

काशीनाथ कबीर की चुटीली बातें सुनकर तड़प उठा। यद्यपि उसकी अंतरात्मा स्वीकार कर उठी कि कबीर कहता तो ठीक है तथापि धर्म की ठेकेदारी और जनता में अपनी श्रेष्ठता की रक्षा करने के लिए उसने अंतरात्मा की आवाज को अनसुनी कर दिया और पशुता पर उतर आया। वह क्रोध से बोला—"नीच जुलाहे के बच्चे बड़ा पंडित बनकर मुझे सीख देता है।" इतना कहकर काशीनाथ ने एक जोर का थप्पड़ उसके गाल पर मारा। बालक कबीर लड़खड़ा गया। उसका सिर झनझना उठा, लेकिन वह भयभीत तब भी नहीं हुआ। बोला—"महाराज! धर्मात्मा और पंडित तो बड़े बनते हो, लेकिन गरीब पर हाथ उठाते लज्जा नहीं आई। गरीब को सताना अच्छा नहीं होता। उसकी हाय बहुत हानि पहुँचा सकती है।"

काशीनाथ फिर बिलबिलाया और अपने नौकर से बोला—"अभी इस छोकरे का दिमाग ठीक नहीं हुआ है जरा सँभलकर मरम्मत तो कर दे।" इतना सुनना था कि नौकर ने बुरी तरह कबीर पर लाठियाँ बरसाना शुरू कर दिया। कबीर के सिर, मुँह और नाक से खून बहने लगा और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। काशीनाथ ने घृणा से उसकी तरफ थूका और यह कहता हुआ चल दिया—"नीच जुलाहा कहीं का। मुझे छू लिया, फिर जाकर गंगास्नान करना पड़ेगा।" यह सब देखती खड़ी भीड़ की इच्छा हुई कि काशीनाथ को धिक्कारे और कहे कि छुआ तो कसाई तूने ही उसे और मार भी डाला। तेरी यह हत्या सौ जन्म भी गंगा नहाने से न छूटेगी। तूने राम के एक सच्चे भक्त बालक पर अत्याचार किया है, लेकिन किसी की हिम्मत बोलने की न हुई। काशीनाथ काशी के पंडों का सरदार और कई मंदिरों का मालिक था। नगर में लोग उसके आतंक से डरते थे।

काशीनाथ के चले जाने पर लोगों ने कबीर की परिचर्या की। उसके घाव धोकर दवा लगाई और पट्टी बाँध दी। थोड़ी देर में कबीर को होश आ गया। वह हँसता हुआ खड़ा हो गया और धन्यवाद देता हुआ कहने लगा, आप लोगों ने मेरे लिए नाहक इतना कष्ट किया। राम नाम पर मर

जाता तो सीधा उसकी गोद में चला जाता। अब आप लोगों ने बचा लिया है तो आप सबकी सेवा करूँगा।

भीड़ में खड़ी कई महिलाओं ने दयापूर्वक कहा—"बेटा! इनके मुँह मत लगा करो! साँड़ की तरह खाते और संड-मुसंड बने फिरते हैं। कोई सच्ची बात कह दे तो उसे मारते हैं। नाश जाए इन पापी-पाखंडियों का!"

काशीनाथ का अत्याचार सहकर कबीर की भक्तिभावना तीव्र हो उठी। अब वह स्वामी रामानंद से दीक्षा पाने के लिए छटपटाने लगा। ज्यों ही उसे यह याद आ जाता कि उसे मुसलमान जुलाहा समझकर इसके अयोग्य समझा जाता है, वह हताश होकर सोचने लगता क्या सचमुच यह व्यवस्था इतनी अनिवार्य हो सकती है कि उसकी तुलना में सच्चे प्रेम, सच्ची भक्ति, सच्ची श्रद्धा और जिज्ञासा की अवहेलना की जा सकती है। स्वामी रामानंद जी तो एक ज्ञानी तथा मानवतावादी हैं। क्या उनका यह मानवतावाद एक प्रवंचना है अथवा अभी मेरे धैर्य, मेरी जिज्ञासा की परीक्षा ली जा रही है?

स्वामी रामानंद जी नित्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में गंगास्नान करने आते थे और सूर्योदय से पूर्व ही स्नान करके अपने कुटीर में वापस चले जाते थे। कबीर डेढ़ प्रहर रात रहे घाट की सीढ़ियों पर जाकर बैठ जाता। स्वामीजी आते, वह उन्हें प्रणाम करता और तब तक बैठा रहता जब तक उनसे स्नान करके लौटने पर प्रणाम न कर लेता। यह क्रम चला तो चलता ही चला गया। स्वामी रामानंद जी उसे नित्य देखते उसका प्रणाम स्वीकार करते और बिना कुछ बोले चुप-चाप राम नाम जपते हुए आते और चले जाते।

कबीर पर किया गया काशीनाथ का अत्याचार कुछ ही समय में नगर भर में आग की तरह फैल गया था और यह घटना जनगण का विषय बन गई थी। लोग जगह-जगह लगभग नित्य ही कबीर को मिटा देने का उपाय सोचने लगे। किंतु—

जाको राखै साइयाँ मारि सकै नहिं कोइ।
बाल न बाँका करि सके जो जग बैरी होइ॥

इस सिद्धांत के अनुसार राम भक्त कबीर का कुछ भी न बिगड़ा और एक दिन वह भारत का प्रामाणिक संत बनकर समाज में प्रतिष्ठित हुआ।

स्वामी रामानंद को यह देखते महीनों गुजर गए कि एक किशोर उनके रास्ते में गंगा की सीढ़ियों पर नित्य प्रातः बैठा मिलता है। उन्हें चुपचाप आते-जाते समय प्रणाम करता है, पर कभी बोलता कुछ भी नहीं। हाँ प्रणाम करते समय उसकी आँखें जरूर भरी होती हैं और ओठ काँपते होते हैं। उन्होंने यह भी देखा कि जब तक वे स्नान करते रहते वह एकटक उन्हीं की ओर देखता और जाते समय भी प्रणाम करके उन्हीं की ओर टकटकी लगाए रहता है। न किसी के साथ आता, न जाता और न घाट पर ही कभी किसी से बात करता दीख पड़ता।

इन सब लक्षणों से संत को विश्वास हो गया कि यह किशोर केवल उनके लिए ही यहाँ बैठता है। उसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं है और उसके हिलते हुए ओंठ और भरी हुई आँखें प्रकट करती हैं कि वह कुछ कहना चाहता है पर साहस नहीं कर पाता।

स्वामी रामानंद की मानवता तड़प उठी और उन्होंने गंगा स्नान से लौटते समय, जब कबीर ने दंडवत की तो उससे पूछ ही लिया—किशोर! मैं कई माह से देख रहा हूँ कि तुम इसी स्थान पर बैठे मिलते हो। मुझे प्रणाम करते हो। क्या मुझसे कुछ प्रयोजन है या कुछ कहना चाहते हो? कबीर ने कहा—गुरुदेव! उसका गला रुँध गया और वह फफक-फफककर रोने लगा। उसकी आँखों से गंगा-जमना की धाराएँ बह उठीं। उसकी हिचकी बँध गई। वह बड़ी देर तक रोता रहा। स्वामी रामानंद जी कबीर की दशा देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने उसकी आँखें पोंछीं और प्यार से कहा—रोओ मत बेटे! अपना कष्ट मुझे बताओ, ब्राह्मणोचित मैं कुछ सहायता कर सकूँ! बड़े दुखी मालूम पड़ते हो।

कबीर को ढाढ़स हुआ। उसने सिसकते हुए कहा—गुरुदेव! दुखी नहीं, बहुत दुखी, जन्म-जन्म का दुखी हूँ, मुझ पर कृपा करिए, मेरा

उद्धार करिए। मेरी आत्मा भवसागर में तड़प-तड़पकर आपके आश्रय, आपकी शरण की पुकार कर रही है।

स्वामी रामानंद जी ने धैर्यपूर्वक कहा बालक! तुम तो दार्शनिक मालूम होते हो। निश्चय ही तुम्हारी आत्मा में अध्यात्म भावना की तरंग निवास करती है। तुम अपनी बात साफ-साफ कहो तो समझूँ कि तुमको किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है और उसमें कहाँ तक सहायक हो सकता हूँ?

'गुरुदेव!' कबीर ने कहा—"मुझे दीक्षित करिए और गुरुमंत्र देकर मेरा उद्धार करिए। मैं आपका शिष्य होकर आपकी शरण में आना चाहता हूँ। मेरी आत्मा ज्ञानामृत के लिए तड़प रही है, उसकी शांति आपके ही अधीन है।"

किशोर! तुम्हारा परिचय? "मैं एक शरणागत जिज्ञासु हूँ, क्या इतना परिचय पर्याप्त नहीं है गुरुदेव?" कबीर ने उत्तर दिया। "तुम्हारी जिज्ञासा, तुम्हारी पात्रता प्रकट करती है, किंतु शास्त्रों के नियमानुसार यह भी देखना आवश्यक होता है कि कौन दीक्षा का अधिकारी है और कौन नहीं?" स्वामी रामानंद ने समझाया।

"तब तो गुरुदेव!" कबीर के स्वर में निराशा थी, शायद मेरी पात्रता आपको न भाए। मेरा परिचय पाते ही आप मुझे ठुकरा देंगे और अभी तुरंत जाकर गंगास्नान करेंगे।"

'तब भी'—स्वामी रामानंद ने फिर पूछा।

'तो फिर निवेदन है' कबीर ने बतलाया, "मैं नीरू जुलाहे का पुत्र कबीर हूँ।"

स्वामी रामानंद जी को सहसा एक धक्का सा लगा। उनके संस्कार कठोर हो उठे। उन्होंने कहा, "तब तो विवशता है।" निश्चय ही मुझे अभी दुबारा गंगास्नान करना होगा।

'हाँ, गुरुदेव' कबीर ने टूटे हृदय से कहा—"आपकी पवित्रता मुझे पावन न बना सकी, किंतु मेरी अपावनता ने आपको पुनः स्नान के लिए बाध्य कर दिया। सुना था देवता के स्पर्श से पापी तक

पावन हो जाते हैं, किंतु आज एक देवता मनुष्य को छूकर अपावन हो गया।''

स्वामी रामानंद ने कबीर के कथन में निहित जिस ज्वार को अनुभव किया, उसी में सत्य का आभास भी पाया। वे क्षण भर रुके, फिर बोले, ''वत्स! नियम, नियम हैं। उनके पालन में भावुकता की अपेक्षा कठोरता अधिक अपेक्षित है। संसार में समुचित कार्य विभाजन के लिए वर्ण-व्यवस्था बनाई गई है। यदि अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्म छोड़कर मनुष्य अन्य क्षेत्रों में प्रवेश करने लगें तो न कर्म-कौशल का विकास होगा और न काम में दक्षता ही आएगी। परंपरा से जातिगत कार्य करते रहने से किसी भी शिल्प में निपुणता और पूर्णता दोनों गुण आ जाते हैं। यदि सभी वर्णों के लोग अपना-अपना कर्म छोड़ दें तो संसार में अव्यवस्था फैल जाए और जीवन में न जाने कितनी कठिनाइयाँ आ खड़ी हों। तुम्हारा कर्म वस्त्र बनाना है। अपना कर्म करो उसी से तुम्हारा उद्धार होगा।''

''आपकी शिक्षा शिरोधार्य है गुरुदेव! किंतु यदि अज्ञान क्षमा हो तो कतिपय समाधानों की याचना करूँ।'' कबीर ने फिर निवेदन किया। ''हाँ, हाँ, अवश्य वत्स! मस्तिष्क में शंकाओं को नहीं रहने देना चाहिए। शंकाएँ सर्पिणी के समान होती हैं जो मनुष्य के विवेक को डसकर अचेत कर दिया करती हैं।'' स्वामी रामानंद ने अनुमति दी।

कबीर बोले, ''गुरुदेव! समाज में जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी अपना जातिगत कर्म छोड़कर और-और काम करने लग गए हैं और यदि आगे भी करने लग जाएँ तो उनके लिए क्या नियम व्यवस्था है? और इस परिवर्तन से शिल्पों में ह्रास हुआ है या विकास?''

''बालक! न तो मैं शिल्पी हूँ, न कलाकार और न अर्थशास्त्री। मेरा क्षेत्र अध्यात्म है। जिन्होंने शास्त्र के नियमों का उल्लंघन किया है उन्होंने गलती की है। उसी गलती को सब लोग भी दोहराते रहें, इस बात का मैं विरोधी हूँ। शास्त्र के नियमों का पालन करना मनुष्य का धर्म है।'' स्वामी रामानंद जी चुप हो गए।

"गुरुदेव!' कबीर ने आगे शंका की, "जातिगत कर्मों की व्यवस्था से जो एकाधिपत्य की भावना जन्म लेकर समाज में विकृतियों का विस्तार करती है, उसके परिशोधन के लिए कौन से उपाय हैं?"

कबीर की शंका सुनकर स्वामी रामानंदजी को कुछ हँसी आ गई। बोले, "कबीर! तेरे विषय में जैसा सुना था तू वैसा ही निकला, लेकिन यह तो बता कि तू मेरे समीप गुरुदीक्षा के मंतव्य से आया है या शिक्षा देने?"

"गुरुदीक्षा की जिज्ञासा से गुरुदेव!" कबीर ने व्यग्रता के साथ कहा—"मैं तो आपका जन्म-जन्म का सेवक हूँ, दास हूँ। आप तो मेरे जन्म-जन्म के गुरु हैं, इस जन्म के भी। तो क्या मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई, मैं अपने को कृतार्थ समझूँ?"

"कबीर जल्दी न कर। भगवान मनु की बनाई वर्ण व्यवस्था में अपवाद करना सरल नहीं। किसी नियम का अपवाद करने के लिए भी तो किसी नियम का ही आधार लेना होगा। देखूँगा कहाँ तक अधिकार है? शास्त्रों के पुनरावलोकन की बात है सो देखूँगा, वैसे जहाँ तक मेरा विचार है निराशा ही रहेगी।" स्वामी रामानंद ने वार्तालाप बंद कर दिया और गंगास्नान के लिए चल दिए।

"भगवन! आप स्वयं ही व्यवस्थापक हैं, समर्थ हैं; किसी भी नियम का अपवाद कर सकने के अधिकारी हैं।" कबीर ने चलते-चलते प्रार्थना की। उस दिन कबीर स्वामी रामानंद के फिर नहाकर वापस आने तक न रुका। उसने सोचा कदाचित उसका अब रुकना दुराग्रह का सूचक होगा जो उसके प्रति उनकी आधुनिक मनोभूमि में अन्यथा भाव का कारण बन सकता है। उसने दूर से ही उन्हें दंडवत की और एक आशा-निराशा की सम्मिलित अनुभूति के साथ घर की ओर चल पड़ा।

काशीनाथ के सिर तो कबीर हर समय सवार ही रहता था। उसके गुप्तचर छूटे रहते और नित्य ही वह उसका समाचार जानने को उत्सुक रहता। उसे कबीर और स्वामी रामानंद की बात-चीत का समाचार भी

मिला। 'अच्छा तो यह बात है।' काशीनाथ क्रोध में भरकर साँप की तरह फुंकार उठा।

काशीनाथ दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही अपने खूनी नौकर को लेकर घाट पर जा पहुँचा। कबीर बैठा हुआ था। काशीनाथ ने क्रोधपूर्वक पूछा—"कैसे बैठा है बे, इस समय इस पवित्र घाट पर?" कबीर ने नमस्कार किया और कहा—"स्वामी रामानंदजी के दर्शन करने के लिए बैठा हूँ महाराज!" तो यह बात है, मेरे विरुद्ध खड़ा करने के लिए स्वामी रामानंदजी पर डोरे डाल रहा है। नीच-म्लेक्ष!"

"कैसी बातें करते हैं महाराज! मैं भला आपका विरोध करूँगा?" कबीर ने ग्लानिपूर्वक कहा। किंतु काशीनाथ तो क्रोध और द्वेष की भावना से पागल हो रहा था, बोला—"और नहीं तो क्या मेरा यश गाएगा?" फिर नौकर की ओर देखकर कहा—"क्या देखता है रे, निपटा दे शैतान को।"

आदेश पाना था कि नौकर ने लाठी छोड़ दी। कबीर घायल होकर गिर पड़ा और नौकर ने मारना शुरू किया। तभी काशीनाथ को दूर पर पादुकाओं की आवाज सुनाई पड़ी। बोला—"कोई आ रहा है।" दोनों भाग खड़े हुए।

धीरे-धीरे कबीर की चेतना जाग रही थी कि तब तक उस पर किसी का पैर पड़ गया। कबीर कराहा। स्वामी रामानंद 'राम कह बच्चा राम कह' कहकर उसकी ओर झुके और देखने लगे कि इस समय अँधेरे में घाट की सीढ़ियों पर कौन पड़ा है? आवाज पहचानकर कबीर की चेतना रुक गई। उसने स्वामी रामानंद के चरणों पर सरककर प्रणाम किया और धीरे से कहा—"गुरुदेव! मैं कबीर हूँ। मुझे गुरुमंत्र मिल गया। मैं कृतार्थ हुआ। 'राम-राम', कहता हुआ कबीर अचेत हो गया।"

अरे इसे किसने मारा? स्वामी रामानंद व्याकुल हो उठे। उन्होंने तुरंत उसे गोद में उठा लिया। जल के पास लाए। उसका रक्त धोया। अँचला फाड़कर पट्टी बाँधी। मुँह पर जल के छींटे मारे और गंगाजल के कुछ बिंदु पिलाकर कहा—माता जाह्नवी इस बालक भक्त की रक्षा

करना। कबीर ने एक क्षण फिर कराहा और राम...राम...कहकर फिर बेहोश हो गया। स्वामी रामानंद को आशा बँध गई। उन्होंने उसे अच्छी तरह लिटाकर गंगा स्नान किया।

जब वे लौटे तो कबीर को होश आ गया था, पर शिथिलता के कारण आँखें बंद किए पंड़ा था। किसी का स्पर्श पाकर उसने आँखें खोलीं। देखा स्वामी रामानंद उसे गोद में उठा रहे हैं। वह निषेध करता हुआ जल्दी से बोला—"गुरुदेव! मुझ अस्पृश्य नीच को न छुएँ नहीं तो आपको फिर गंगास्नान करना होगा। मैं चल लूँगा। आप कष्ट न करें। नहीं-नहीं। ऐसा अनर्थ न करें। मैं तो आपका दासानुदास हूँ, शिष्य हूँ। मुझे गोद लेकर चलना आपके लिए शोभनीय नहीं हैं। मुझे पाप लगेगा गुरुदेव!" "बावला कहीं का, पाप कैसा? तू मेरा शिष्य ही नहीं मेरा पुत्र भी है" कहकर स्वामी रामानंद ने बलात उसे गोद में लेकर कंधे से लगा लिया। गंगा घाट से कुटीर तक स्वामी रामानंद का स्कंध और पीठ भीगती चली गई। कबीर बराबर रोता रहा।

कुटिया पर आकर स्वामी रामानंद ने एक आदमी को घर भेजकर कहला दिया कि कबीर स्वामी जी के पास है। आज कुछ देर से आएगा। कोई चिंता न करें।

माता नीमा ने संदेश सुना और संदेशवाहक से पूछा, "महाराज! कबीर स्वामी जी के पास कैसे पहुँच गया?" संदेशवाहक ने सारी घटना बतला दी और आश्वासन दिया कि कबीर अब बिलकुल ठीक है। स्वामीजी ने उसको अपनी शरण में ले लिया है। अब उसे किसी बात का भय नहीं है। कबीर के हृदय में परमात्मा की भक्ति है। वह आगे चलकर बड़ा भारी संत होगा। नीमा तू बड़ी भाग्यवान है।

संदेशवाहक चला गया, पर नीमा की चिंता दूर न हुई। वह सोचने लगी, तो क्या कबीर साधू हो जाने को है। उसके तो लक्षण पहले से ही ऐसे थे। अब तो वह स्वामी जी के पास चला गया है। कहीं ऐसा न हो कि लड़का हाथ से चला जाए। उसने बड़ी कोशिश करके कबीर का विवाह तफी नामक एक जुलाहे की लड़की लोई से तय कर दिया।

अब कबीर पहले से अधिक काम करने लगा था। उसका जी भी पहले से ज्यादा लगने लगा था। वह प्रात:काल नित्यप्रति स्वामी रामानंदजी की कुटिया पर सत्संग में सम्मिलित होने जाता और वहाँ से वापस आकर सायंकाल तक करघे पर बैठा कपड़ा बुना करता। काम में उसकी रुचि पहले से कहीं अधिक बढ़ गई थी। कपड़ा भी पहले से ज्यादा अच्छा और अधिक होने लगा था। इसका कारण यह था कि वह अब अपने काम को अपना नहीं समझता था। बल्कि राम का काम समझता था और बड़ी श्रद्धापूर्वक किया करता था।

इसके अतिरिक्त जितनी देर वह काम करता था उतनी देर कुछ न कुछ गुनगुनाता रहता था। उसका तल्लीनतापूर्ण गुनगुनाना एक भजन के रूप में बदल जाता था। अपने उसी नवनिर्मित भजन को वह नित्य ही स्वामी रामानंद जी की सत्संग गोष्ठी में सुनाया करता था। यद्यपि कबीर कुछ पढ़ा-लिखा न था तथापि उसके हृदय से निकले हुए भक्ति रस में डूबे भजन इतने मार्मिक तथा भावपूर्ण होते थे कि लोग सुनकर भाव-विभोर हो जाते थे। धीरे-धीरे कबीर एक कवि के रूप में भी प्रसिद्ध हो गए। निश्चय ही सत्संग का प्रभाव मनुष्य की आत्मा पर पड़ता है और आत्मा का प्रकाश मन, बुद्धि, विवेक को जगाकर मनुष्य की गुणात्मक प्रतिभाओं को जाग्रत कर देता है। इसी से शास्त्रों में सत्संग की महिमा का बखान किया गया है। अशिक्षित व्यक्ति भी सत्संग में आकर योग्य और मूढ़जन पंडित बन जाते हैं।

स्वामी रामानंदजी द्वारा कबीर को दीक्षा दिया जाना एक अभूतपूर्व घटना थी। इससे काशी के पंडितों में खलबली मच गई। सभी लोग स्वामी रामानंद के इस कार्य को अधार्मिक कहकर आलोचना करने लगे। काशीनाथ ने इस आलोचना का नेतृत्व किया! उसने शास्त्रों तथा वर्ण व्यवस्था की दुहाई देते हुए काशी के पंडितों को इस कदर भड़काया कि वे स्वामी रामानंद के विरोधी बन गए।

कुछ की राय हुई कि स्वामी रामानंद को धर्मद्रोही कहकर उनके विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया जाए और उन्हें काशी के विद्वानों की

सभा के प्रधानत्व से अपदस्थ कर दिया जाए, पर काशीनाथ इतना बड़ा कदम सहसा उठाने को तैयार न हुआ। उसका सारा क्रोध कबीर पर था। वह इस घटना का सहारा लेकर कबीर को मिटा देना चाहता था। उसने पुनः लोगों को कबीर की ही दुरभिसंधि बतलाई और उनमें सांप्रदायिक द्वेष की भावना भड़काई। जब लोग कबीर पर क्रुद्ध हो उठे तो वह उस उत्तेजित मंडली को लेकर कबीर के घर की ओर चल दिया। वहाँ जाकर उसने कबीर को बाहर आने के लिए पुकारा। कबीर उस समय करघे पर बैठा कपड़ा बुन रहा था और साथ ही बड़ी तन्मयता से गुनगुना भी रहा था।

शोर सुनकर कबीर बाहर निकल आया और बोला—"कहिए कैसे कष्ट किया, मैं हाजिर हूँ।" कबीर की निर्भीकता देखकर पंडितों की उत्तेजना शिथिल पड़ गई। फिर भी काशीनाथ आवेश करता हुआ बोला—"तूने हमारा धर्म भ्रष्ट कर दिया है, हम तुझे आज मार डालेंगे।"

कबीर को हँसी आ गई, बोले—"मौत और जिंदगी तो एक उस परमात्मा के अधिकार में है। मनुष्य न किसी को मार सकता है और न जिला सकता है। फिर आप मारेंगे किसे? आत्मा तो अमर है। उसे क्षति पहुँचाई ही नहीं जा सकती। आप लोग तो पंडित हैं जानते ही होंगे-**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि....**" काशीनाथ गरज उठा—"चुप रह म्लेक्ष हमें गीता का पाठ पढ़ाता है। मैं आज तेरी हत्या कर दूँगा।"

कबीर वैसे ही हँसता हुआ बोला—"तो फिर आगे बढ़िए। अगर आपके हाथों ही मरना है तो डर किस बात का?" काशीनाथ दाँत पीसता हुआ आगे बढ़ा, तभी सुनाई पड़ा—"काशीनाथ ठहरो!" स्वामी रामानंद भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़े। काशीनाथ ठिठक गया। स्वामी रामानंद बोले—"काशीनाथ! कबीर निरपराध है। उसे दीक्षा देकर अधर्म तो मैंने भ्रष्ट किया है। मुझे मारो।"

स्वामी रामनंद की सौम्य किंतु तेजस्वी मूर्ति देखकर सारे पंडित शिथिल पड़ गए। किंतु काशीनाथ ने धृष्टता की। बोला—"स्वामी रामानंदजी! आप हिंदू धर्म के अगुआ माने जाते हैं। आपने एक नीच विद्यार्थी को दीक्षा

देकर हिंदू धर्म पर आघात किया है। हम सब यह सहन नहीं कर सकते।'' कहकर काशीनाथ ने अनुमोदन की आशा से पीछे भीड़ की तरफ देखा, किंतु कोई सहमति न दिखलाई दी। काशीनाथ हतोत्साह होकर अकेला पड़ गया। तब भी उसने आगे कहा—''जब आप जैसे धर्मज्ञ भी ऐसा अनर्थ करने लगेगें, तब तो धर्म जल्दी नष्ट हो जाएगा और कबीर जैसे नीच लोग भी ब्राह्मणों के बराबर होने का दंभ करने लगेंगे। आपका यह अन्याय सहनीय नहीं है।''

स्वामी रामानंद ने गंभीरता से कहा—''धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? इसको मैं भी जानता हूँ। केवल किसी नवीनता का विरोध करना और किसी निरपराध की हत्या करने का प्रयास करने से धर्म-लाभ नहीं होता। काशीनाथ! कबीर शरीर से भले ही जुलाहा हो, पर आत्मा से वह ब्राह्मणों से ऊपर है। मैंने दीक्षा उसके शरीर को नहीं, उसकी उस पवित्र आत्मा को दी है, जिसमें रामभक्ति का निवास है। धर्म न नष्ट होने वाली वस्तु है और न भ्रष्ट। किसी धर्म के दुष्ट धंधक ही उसे अपने अपकर्मों द्वारा भ्रष्टता का आरोप दिलाया करते हैं और तुम जैसे संकीर्ण कार्यकर्त्ता ही धर्म का द्वार दूसरों के लिए बंद कर उसके विनाश के बीज बोया करते हैं। जिसके मन में सच्ची जिज्ञासा है, जो उसके नियमों का आदरपूर्वक पालन कर सकता है, मेरी व्यवस्था है कि वह इस आर्य धर्म को ग्रहण कर सकने का सर्वथा अधिकारी है।'' ''तो आप अनादिकाल से चली आ रही, भगवान मनु की बनाई कार्य व्यवस्था में संशोधन करने का अधिकार रखते है।'' काशीनाथ ने तीखे स्वर में कहा। ''हाँ काशीनाथ!'' स्वामी रामानंद बोले, ''धर्मवृद्धि एवं धर्मरक्षा के लिए भगवान मनु का कोई भी योग्य उत्तराधिकारी, समयानुकुल पूर्वकालीन व्यवस्था में सुधार एवं संशोधन करने का अधिकारी है। मैं भी हूँ और तुम भी, यदि धर्म के शाश्वत प्रकाश से तुम्हारी आत्मा आलोकित है और तुमने उस आलोक को अपने सद्विवेक में अवलोकन किया है। कबीर निर्दोष है। दीक्षा मैंने उसे दी है। तुम यदि इसे धर्मद्रोह समझते हो तो आगे बढ़ो और मेरा वध करके धर्मरक्षा का श्रेय लो।''

काशीनाथ का अस्तित्व हिल गया और भीड़ को तो काठ मार गया। धीरे-धीरे सब खिसकने लगे। चलते-चलते काशीनाथ फिर कहता गया—"पर स्वामी रामानंदजी अब आप काशी की पंडित सभा के प्रधान न रह पाएँगे।" "मैंने उसे अभी इसीलिए त्याग दिया है, जाकर इसकी घोषणा कर दो! स्वामी रामानंद ने निर्णय दे दिया।

भीड़ चली गई। कबीर स्वामी रामानंद के चरणों पर लोटकर रो उठा, बोला—"प्रभु! आप मेरे लिए यह सब आपत्ति अपने ऊपर न लें। मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरे कारण ही काशी में हलचल उठ खड़ी हुई है। मैं संसार के किसी ऐसे कोने में चला जाऊँगा, जहाँ मुझे कोई भी राम नाम लेते न देखे और न सुने।"

स्वामी रामानंद ने कबीर को उठाकर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा—"कबीर क्या हिम्मत हार गया? धर्म के सच्चे मार्ग में आडंबरी इसी प्रकार आपत्तियाँ खड़ी करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे, पर क्या सच्चे धार्मिक उनके डर से अपना मार्ग छोड़कर गुप्त वास किया करते हैं? यदि ऐसा होने लगे तो ये धर्मधंधक भेड़िये धर्मसहित सारी जनता की आत्मा ही खाकर हजम कर जाएँ और संसार में एक स्थाई असुर युग की स्थापना हो जाए। तुझे जाना कहीं नहीं। मेरे बाद मेरा प्रकाश आगे बढ़ाना है। मैं तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा। किंतु तब, जब तू अपनी पात्रता बनाए रहेगा और सत्य के लिए हर कष्ट सहन करने को तत्पर रहेगा!" स्वामी रामानंद जी चल दिए। कबीर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उसे रोककर स्वामी रामानंद ने कहा—"जाओ अपना काम करो। सायंकाल सत्संग में आना। चलते हुए नीमा को भी निर्भय रहने के लिए कहते गए।"

कबीर का व्याह हो गया, पर उसने न मुल्ला-काजी को पूछा और न बिरादरी को भोज दिया। इससे उनमें खलबली मच गई। बड़ी-बड़ी बातें होने लगीं। किसी ने कहा वह तो बेशरम हो गया है। किसी ने कहा वह तो पहले से ही काफिर है। यह कोई नई बात उसने थोड़े की है। किसी ने राय दी कि उसके घर चलकर उसे लताड़ा जाए और साफ कह दिया

जाए कि उसे जाति से बाहर कर दिया गया है। कोई बोला—कबीर तो लड़का है। उसकी माँ नीमा की अक्ल पर क्या पत्थर पड़ गए थे?

बहुत सी हायतोबा होने के बाद बहुत से लोग कबीर के घर की तरफ चल दिए। कबीर उस समय बड़ी तन्मयता से बैठा करघे पर काम करता हुआ सायंकालिक सत्संग के लिए गुनगुनाकर भजन रच रहा था। लोई पास ही बैठी उसे मदद कर रही थी। भीड़ पहुँची। बाहर से आवाज आई—क्या काफिर कबीरा घर में है?

लोई चौंक उठी घबराकर बाहर की तरफ झाँकने लगी, बोली—"मालूम होता है बिरादरी के लोग आए हैं।" आवाज फिर आई—क्या काफिर कबीरा घर पर है या नहीं? कबीर ने काम रोका और बाहर आकर पूछा—क्या काम है आप लोगों को काफिर कबीरा से? मैं हाजिर हूँ। फरमाइए क्या हुक्म है? लोई और नीमा दरवाजे की आड़ में खड़ी हो गईं।

www.vicharkrantibooks.org

भीड़ से दो-तीन की आवाज एक साथ आई—"तुम्हें इस तरह हाथ पकड़ाऊ विवाह कर लेने का क्या हक था? न काजी बुलाया और न भाई-बंधुओं को। हम लोग इस निकाह को नाजायज करार देते हैं।"

कबीर ने शांतिपूर्वक कहा—"ब्याह तो मैंने लोई से और लोई ने मुझसे किया है और पूरी राजी-रजामंदी से। फिर इसमें काजी को बुलाने की क्या जरूरत थी? काजी की जरूरत तब पड़ती है, जब विवाह में किन्हीं शर्तों को तय करने की जरूरत होती है और उन शर्तों को कानूनी रूप देने के लिए किसी बिचौलिये की गवाह की। विवाह के बीच काजी का यही काम है। हमारे और लोई के बीच न कोई शर्तें तय होनी थीं और न आगे चलकर हममें से किसी को झगड़े या तलाक का अंदेशा था। तब काजी की जरूरत मेरी समझ में जरा भी नहीं आती! विवाह की मंजूरी ना मंजूरी का सवाल तो हम दोनों से मतलब रखता है, आप लोगों को उसे जायज या नाजायज ठहराने का कोई हक नहीं है। रही भाई-बंधुओं की खातिर-तवाजे की बात तो उसके लिए साफ बात यह है कि मैं गरीब आदमी हूँ।

मेरे पास बेकार खाने-उड़ाने के लिए पैसा न था और न है। कर्ज लेकर फजूलखरची करना एक ऐसा गुनाह है जो पूरी जिंदगी तवाह कर देता है। मेरा ख्याल है कि अगर आप लोगों को दावत देकर खुश कर दिया गया होता तो शायद मेरा विवाह नाजायज भी होता तो भी जायज करार दे दिया जाता। मेरा विवाह तो सोलह आना साफ है, मुझे दावत की रिश्वत देकर उसके जायज होने का प्रमाण पत्र लेने की क्या जरूरत थी? आप लोगों के समाज की यही तो कमजोरी है कि आप लोग पुराने सड़े-गले रीति-रिवाजों को अपनाए हुए चले जा रहे हैं, उनको पूरा करने के लिए कर्ज पर कर्ज लेते हैं, जिंदगी भर सूद-ब्याज के चक्कर में पड़े हुए गरीबी और भुखमरी का सामना करते रहते हैं। न तो रोजगार में तरक्की कर पाते हैं और न बाल-बच्चों को पढ़ा-लिखा पाते हैं। दिन-रात मेहनत करते हैं, तब न पेट को रोटी और न तन को कपड़ा नसीब होता है! अब आप लोग नई रोशनी में आँख खोलिए। अक्लमंदी से काम लीजिए और बेकार के रीति-रिवाज छोड़कर अपना सुधार कीजिए।"

बातें सुनकर लोगों ने देखा, उन्हें लगा कि कबीर अब काफी बड़ा हो गया है। उसकी अक्ल बढ़ गई है और उसकी बात में एक प्रभाव और चेहरे पर तेज आ गया है। तब भी कुछ लोग कहने लगे—कुछ भी सही—मगर तुमने निकाह का नियम तोड़कर नाइंससाफी बरती है। तुमको जाति से बाहर कर दिया गया है। तुम काफिर हो गए हो। यही बतलाने हम लोग यहाँ आए थे।

कबीर ने कहा—"शुक्रिया, मेरी कोई जात ही नहीं है फिर आप मुझे अलग किससे करेंगे? मेरी जात तो इनसानियत है, मेरा मजहब प्रेम और सेवा है। अपना ईमान छोड़ देने वाले मुसलमान ही काफिर हुआ करते हैं। न तो मैं मुसलमान हूँ और न मैंने अपना ईमान खोया है। मेरा ईमान जिंदा है, मेरी राह नेक है, तब मैं काफिर कैसा? वैसे आप लोग जो समझें। अब आप लोग यहाँ कष्ट न करें। कहकर कबीर ने दरवाजे में खड़ी नीमा और लोई से कहा—चलो अंदर चलो।

भीड़ में लोग एकदूसरे का मुँह देखते हुए और संस्कारों पर एक गहरा प्रभाव लिए हुए चल दिए। जहाँ बहुतों के मुँह से निकला—बकता है। वहाँ बहुतों ने कहा—बात तो ठीक और पते की कहता है। साधु-संतों का साथ करता है। बड़ा सयाना हो गया है। भीड़ चली गई और उसके बाद विवाह के बावत कोई हंगामा नहीं हुआ।

काशीनाथ के अत्याचार, स्वामी रामानंद की कृपा, जुलाहों की घटना और भक्तिभावना से ओत-प्रोत भजनों ने कबीर की लोकप्रियता में श्रद्धा का समावेश कर दिया। अब लोग कबीर के स्थान पर महात्मा कबीरदास कहने लगे।

सड़कों, गलियों और बाजारों में लोग जहाँ भी कबीरदास को पा जाते घेरकर रोक लेते। कबीर को भी संकोच न होता और वह यथास्थान ही लोगों को धर्म का तत्त्व बतलाने या भजन सुनाने लगते। कबीर के भजनों तथा प्रवचनों का विषय मुख्यत: अंधविश्वास, आडंबर तथा धर्मविक्रय का विरोध ही होता था। इसके अतिरिक्त वे जनता को समानता तथा अभेदभाव की शिक्षा दिया करते थे। जातिवाद, संप्रदायवाद और छुआछूत का विरोध करने में कबीर को कभी संकोच न होता था। सीधी-सच्ची बात कह देने का कबीर में अनुकरणीय साहस था। सीधे आत्मा से निकली और जनहित की भावना से ओत-प्रोत महात्मा कबीर की वाणी में बड़ा प्रभाव था। जो भी उनको सुनता श्रद्धा से नत हो जाता। दंभ तथा अहंकार से दूषित लोगों की बड़ी संख्या भले ही अपने को कबीर के प्रति आस्थावान होने से वंचित रख सकी हो, किंतु समाज का पिछड़ा और उपेक्षित वर्ग तो तन-मन से उनका अनुयायी बन गया।

जब से लोई आई कबीर और भी अधिक काम करने लगे। वे पहले से दो गुना कपड़ा बनाने लगे। जितना कपड़ा बनाते हाथोंहाथ बिक जाता, कबीरदास के भक्त, अनुयायी और समर्थक उनके कपड़े का अधिक मूल्य देने का प्रयत्न करते, पर कबीर कभी भी एक पाई ज्यादा नहीं लेते। तब भी उनकी आय पहले से बहुत बढ़ गई।

आय की वृद्धि के साथ कबीर की उदारता भी बढ़ गई। उनका रहन-सहन और भोजन-वस्त्र उसी प्रकार का साधारणतम बना रहा। घर के अत्यावश्यक खरच के बाद जो भी शेष रहता था, कबीरदास वह सब धर्म तथा परोपकार में लगा देते थे। उन्होंने न तो अपने लिए मकान बनवाया और न सुख अथवा आराम के साधन बढ़ाए और न कोई पैसा बचाकर ही रखा। उनका सुख तो अपना कर्त्तव्य करने, भजन बनाने, गाने और लोगों को सत्य की शिक्षा देने में था।

जो भी गरीब अथवा आवश्यकताग्रस्त उनके संपर्क में आता उसकी भोजन, वस्त्र तथा आवश्यक धन से सहायता करते थे। उन्होंने न जाने कितनी अनाथ विधवाओं तथा बच्चों को सहारा दिया। बहुत से होनहार बालकों को पढ़ाया और काम-धंधे से लगा दिया। उन्होंने स्थान-स्थान पर कुओं, वृक्षों, गोशालाओं की व्यवस्था की। अतिथि, संतों का तो उनके यहाँ आवागमन ही लगा रहता था। अतिथि-संस्कार को कबीर सबसे बड़ा कर्त्तव्य ही नहीं सत्कर्म भी मानते थे। उनकी यह उदारता और जनसेवा देखकर उनके बहुत से भाई-बंधु उन्हें परोपकार रोककर धन बचाने का परामर्श दिया करते थे, पर कबीरदास सदैव यही उत्तर दिया करते थे कि धन-दौलत, जमीन-जायदाद सब चीजें एक दिन यहीं इसी स्थान पर छूट जाएँगी। यदि मनुष्य के साथ कुछ जाएगा तो उसका सत्य और सत्कर्म ही जाएगा।

कबीरदास का यह प्रसन्नतापूर्ण परोपकारी जीवन चल ही रहा था कि कुछ ही समय के अंतर से दो अप्रिय घटनाएँ घटित हो गईं। एक तो उनकी प्राणप्रिय माता का स्वर्गवास हो गया और दूसरे उनकी आत्मा के प्रियतम स्वामी रामानंद जी दिवंगत हो गए। इन घटनाओं से कबीरदास का अनासक्त हृदय भी विचलित हो गया। उन्हें संसार से सहसा विराग हो गया और उनका यह विराग उनका नवजात शिशु कमाल भी नहीं रोक पाया। कबीर आत्मशांति की खोज में भगवान तथागत की तरह घर छोड़कर चल दिए। लोई ने उनकी मनोदशा का आभास पा लिया था। विरोध न किया। वह कबीर की मूलवृत्तियों से परिचित थी। उन्हें विश्वास था कि कबीर एक दिन फिर वापस आएँगे।

लगभग वर्षभर कबीरदास साधु-संतों, महात्माओं और महंतों के बीच देशाटन करते रहे, पर उन्हें कहीं भी शांति न मिली। साधुओं का आडंबर और समाज का अज्ञान देखकर उनकी अशांति और बढ़ गई। एक बार वे जोगी होकर साधुओं की मंडली में भी मिल गए, किंतु जब उनमें गहराई के साथ बैठकर देखा तो पोल ही पोल पाई। उन्होंने देखा कि साधुओं का जीवन तो लोभ, तृष्णा और माया-मोह में साधारण गृहस्थों से भी गया-बीता है। अपने अनुभवों के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि घर रहकर अपना कर्त्तव्य करते हुए भगवान का भजन करते रहने से अच्छी साधना दूसरी नहीं है। अत: वे घर वापस आ गए और फिर गृहस्थ के साथ अपने कर्त्तव्य और आध्यात्मिक साधना में लग गए।

कबीर का आगमन सुनकर काशी नरेश ने उन्हें बुलाया और स्वामी रामानंद की वसीयत के अनुसार उनके आश्रम का सारा कार्य-भार उन्हें सौंप दिया। कबीर ने अपने गुरु के पदचिन्हों पर चलकर स्वामी रामानंदजी की कुटिया में उन्हीं की तरह प्रात:काल सत्संग करना प्रारंभ कर दिया और वह पवित्र स्थल जो कि स्वामी रामानंद के चले जाने से मौन हो गया था, पुन: प्रखर हो उठा! अब यहाँ कबीर दास के उपदेश तथा भजन सुनने के लिए सैकड़ों की भीड़ एकत्र होने लगी! कबीर की रचनाओं तथा वचनों में सत्य का प्रकाश रहता था जिसे पाकर समाज से जल्दी-जल्दी अंधविश्वास, अंधपरंपराएँ और अंधमान्यताएँ दूर होने लगीं। लोगों के हृदय से छुआछूत, जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेदपूर्ण भाव दूर होने लगा और जनता आध्यात्मिक दृष्टि से अपने को एकदूसरे के समान समझने लगी। उस समय के समाज में यह एक सर्वथा नई क्रांति थी जो कि रूढ़िवादी, पुरातनवादी और श्रेष्ठतावादी आडंबरियों को सहन न हो रही थी, किंतु तब तक कबीर का प्रभाव और लोकप्रियता एक बड़ी ऊँचाई और लगभग सारे देश में फैल चुकी थी। काशी नरेश तक उनका आदर करने लगे थे। अस्तु, विरोधियों को सीधे-सीधे कुछ करते नहीं बनता था। तब भी वे कबीर को हानि पहुँचाने के लिए षड्यंत्र तथा दुरभिसंधियों में लगे रहते थे।

कबीर को देशाटन से वापस आए अभी कुछ ही दिन हुए थे कि एक दिन साधुओं की एक बड़ी भीड़ ने आकर उनका घर घेर लिया। उन सबके हाथों में चिमटे, भाला, बरछों के साथ जलती हुई मशालें थीं। साधुओं का पूरा गिरोह क्रोध से पागल हो रहा था। वह जोर-जोर से कबीर को अपशब्द कह-कहकर नारे लगा रहे थे कि कबीरा ने फिर माया को स्वीकार कर हम साधुओं का अपमान किया है। हम उसे मार डालेंगे और उसका घर जलाकर भस्म कर देंगे। कबीर ने वह शोरगुल सुना और बाहर आकर साधुओं की उस भीड़ को देखा। उन्हें उनका वह अस्वाभाविक रूप देखकर हँसी आ गई। वे बोले—"आप लोग क्या चाहते हैं और यहाँ किसलिए आए हैं?" भीड़ में एक साथ बहुत से साधू बोल उठे। "कबीर! तूने अखाड़े से भागकर हम सबके साथ विश्वासघात और फिर से माया के चक्कर में पड़कर साधुओं का अपमान किया है। अब या तो तू हमारे साथ चल, नहीं तो हम तुझे मार डालेंगे और तेरा घर जला देंगे।"

कबीर ने उनकी बुद्धि पर तरस खाते हुए कहा—"यही साधुता है तुम्हारी कि तुम एक भले आदमी के घर पर हमला करने आए हो। मार डालने और घर जला डालने का विचार रखते हो। ऐसा है तो क्या आप लोग बता सकते हैं कि आपकी इस हथियार बंद भीड़ और डाकुओं, अपराधियों के गिरोह में क्या अंतर है? आप लोगों के बीच रहकर किसी को क्या आध्यात्मिक लाभ हो सकता है? आप लोगों से तो साधारण गृहस्थ अच्छे हैं। वे मूड़ मुड़ाकर साधुता का ढोंग नहीं करते, अपनी गृहस्थी चलाकर संसार की परंपरा तो चलाते हैं। अच्छा होता कि आप लोग इस प्रकार के साधू होने के बजाय साधारण गृहस्थ रहते और जब साधु होते गए थे तो अपना तथा जनता का मंगल करने के लिए कुछ आध्यात्मिक साधना करते। परमार्थ और परोपकार करते, दीन-दुखियों तथा निराश्रितों की सेवा करते।"

भीड़ गरज उठी—"हम तेरा उपदेश सुनने नहीं आए हैं। तुझे लेने आए हैं। या तो तू हमारे साथ चल, नहीं तो हम तेरा घर तेरे साथ जलाकर राख कर देंगे।

तभी एक ओर से गर्जन सुनाई पड़ी—"किसकी हिम्मत है जो महात्मा कबीर का बाल भी बाँका कर सके। जिसमें साहस हो वह बढ़े और उनके घर को आँच दिखाए।" साधुओं ने देखा कि जनता की एक विशाल भीड़ लाठियाँ लिए जमा हो गई है और सब तरफ से लोग बराबर चले आ रहे हैं। जनसमूह को देखकर साधुओं के होश उड़ गए और वे धीरे से बोले कि हम तो उसे माया-मोह से निकालने आए थे। अब उसकी मरजी नहीं है तो उसमें पड़ा रहे। हमको क्या लेना? जनता ने तुरंत कहा—"पहले आप लोग अपना माया-मोह दूर कीजिए, अज्ञान के नरक से निकलिए फिर दूसरे को निकालने की इच्छा करना।" साधुओं की भीड़ धीरे-धीरे खिसक गई।

कबीर ने उसी स्थान पर भीड़ को शांति, मानसिक संतुलन, क्षमा तथा अहिंसा का उपदेश दिया और लोगों को समझाया कि सहसा उत्तेजित होकर कोई काम नहीं करना चाहिए। कोई कदम उठाने से पहले अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए और फिर मेरे लिए तो किसी से कभी विवाद करो ही नहीं। मैं तो जन-जन में प्रेमभाव स्थापित करना चाहता हूँ, न कि विरोध और विद्वेष।

कबीर के चले जाने के बाद लोई को बड़ी तकलीफ रही थी। वह दुःख के कारण अधिक काम न कर पाती थी। जो कपड़ा बुन भी लेती थी उसे पैठ में जाकर बेच न पाती थी। फलस्वरूप उस पर कुछ कर्ज हो गया था। वह कर्ज कबीर के आने के बाद भी न चुक सका। अतिथियों के आने और आदर-सत्कार करते रहने के कारण और बढ़ गया था।

काशीनाथ ने महाजनों को भड़काकर काशी नरेश के दरबार में दावा करा दिया। कबीर को निर्णय में कर्ज चुका देने के लिए तीन माह की अवधि मिली। काशी नरेश कबीर का आदर करते थे। यदि वे चाहते तो कबीर का कर्ज अपने पास से दे सकते थे, पर उन्होंने ऐसा किया नहीं। उसका कारण यह था कि काशीनाथ ने काशी के और बहुत से पंडित लेकर काशी नरेश पर यह प्रभाव डाला था कि कबीर के पास पैसे की कमी नहीं है। उसका कपड़ा खूब बिकता है और स्वामी रामानंद की बहुत सी संपत्ति उसके हाथ लगी है।

अवधि समाप्त होने को आई, पर कर्ज न पट सका। कबीर बहुत चिंतित रहने लगे। उनकी यह चिंता यदा-कदा सत्संग में भी प्रकट हो जाती थी। साथ ही उनके बहुत से भक्तों को भी उनकी इस चिंता का कारण पता था। उनके भक्तों में गरीब वर्ग ही अधिक था। संपन्न वर्ग का साहस उन्हें रुपया देने का नहीं होता था। तभी एक दिन उनका एक भक्त पाँच सौ रुपये की थैली लेकर उनके पास आया और बोला यह रुपये मेरे मामा ने मुझे दिए हैं। आप इन्हें जमा करके कर्ज से छुटकारा पा लें। कबीर ने रुपया लेने से इनकार कर दिया और बोले—"मुझे दान नहीं लेना है। या तो कर्ज अपनी मेहनत के पैसे से चुकाऊँगा या फिर उसके बदले में जेल काटूँगा।" भक्त ने बहुत अधिक अनुरोध किया। तब कबीर ने वह रुपया नये कर्ज के रूप में इस शर्त पर स्वीकार करके लिया कि उसके मामा को यह रुपया थोड़ा-थोड़ा करके वापस देते रहेंगे जिसे उसे लेना होगा।

रुपया जमा करने के दिन कबीर काशी नरेश के दरबार में गए कर्ज अदा कर दिया। अभी दरबार में उसकी लिखा-पढ़ी ही हो रही थी कि तब तक काशीनाथ आ पहुँचा। उसने कहा—"महाराज यह रुपया चोरी का है। कल रात कबीर ने मेरे घर में सेंध काटकर यह रुपया चुराया है।" उसने अपने कथन की पुष्टि में अनेक गवाह भी पेश किए ।

कबीर ने काशी नरेश से कहा—"महाराज! काशीनाथ झूँठ कहते हैं। मैंने चोरी नहीं की है।"

काशी नरेश ने पूछा—"तो फिर आपको इतना रुपया कहाँ से मिल गया?" "महाराज! मुझे यह रुपया एक राम भक्त ने कर्ज के रूप में दिया है, जिसको मैं धीरे-धीरे चुकता कर दूँगा।"

"आपका वह भक्त कौन है? उसे पेश करिए।" काशी नरेश ने आदेश दिया। कबीर भक्त को लाने के लिए छुट्टी माँग ही रहे थे कि तब तक वह स्वयं आ पहुँचा। पूछे जाने पर उसने बतलाया कि वह रुपया उसको काशीनाथ ने दिया था और कहा था कि कबीरदास को दे देना

लेकिन मेरा नाम न बतलाना, नहीं तो वह स्वीकार नहीं करेंगे। मैंने वैसा ही किया। अब काशीनाथ कबीरदास जी को फँसाने के लिए आपके सम्मुख झूठ बोल रहे हैं।''

काशीनाथ के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। फिर भी वह बोला—''महाराज! यह आदमी झूठ बोलता है। मैं कबीर को रुपया क्यों देता? उससे तो मेरी दुश्मनी चल रही है। कौन ऐसा होगा जो दुश्मन को फँसाने की बजाय आपत्ति से छुड़ाने का प्रयास करेगा?''

काशी नरेश काशीनाथ की दशा और उनका कथन सुनकर मुस्कराए और बोले—''तो कबीर से तुम्हारी दुश्मनी है और हर आदमी अपने दुश्मन को फँसाने का उपाय करता है। बचाने का नहीं। वही तुम भी कर रहे हो, है न यही बात।''

क्रोध, आवेश, विद्वेष तथा असत्य के कारण काशीनाथ की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी, उसकी जागरूकता समाप्त हो गई थी। सहसा उसके मुख से निकल गया,''हाँ महाराज!'' और फिर तत्क्षण अपनी भूल समझकर परिमार्जन करता हुआ जल्दी-जल्दी कहने लगा, ''नहीं, नहीं महाराज मैं कबीर को फँसाना नहीं चाहता, उसने मेरे घर चोरी की है। उसे दंड मिलना चाहिए। यह आदमी कबीर पर अंधश्रद्धा के कारण झूँठ बोल रहा है। मैंने उसे रुपए नहीं दिए थे।''

काशी नरेश फिर मुस्कराए और फिर सहसा ही कठोर होकर कड़ी आवाज में बोले—''काशीनाथ! असलियत तुम्हारे मुँह से ही खुल गई है। तुमने कबीर को फँसाने के लिए वह सब जाल रचा है। इसके लिए तुम सख्त सजा के भागी बनोगे।''

काशीनाथ की रही सही हिम्मत टूट गई। अपराध उसके सिर चढ़कर बोल उठा। वह काशी नरेश के पैरों पर गिरकर बोला—''महाराज! मुझे क्षमा किया जाए। मैं अपना प्रसंग वापस लेता हूँ।''

सत्य सिद्ध हो चुका था। काशी नरेश ने कबीर को मुक्त करने और काशीनाथ को दो सौ कोड़े लगाए जाने का निर्णय दे दिया। कबीर को दरबार के बाहर खड़ी भीड़ आदरपूर्वक अपने कंधों पर चढ़ाकर जय-

जयकार के साथ ले चली और काशीनाथ को सिपाही कोड़े मारने के लिए पकड़ ले गए। इस घटना ने कबीर की लोकप्रियता और बढ़ा दी।

उन्हीं दिनों काशी के काजी ने कुछ हिंदू अछूत जातियों को भय और लालच के आधार पर मुसलमान बनाने की योजना बनाई। उसके लिए जुमे का दिन निश्चित कर दिया गया। जुमा आया और अछूतों की भीड़ कलमा पढ़ने के लिए जामा मसजिद में जमा होने लगी। कबीर को इस बात का पता लगा तो वे तुरंत मसजिद में पहुँचे और लोगों को समझाने लगे।

"भाइयो! हिंदू से मुसलमान होकर आप लोग क्या लाभ उठाएँगे? अपना धर्म छोड़कर कभी किसी को सद्‌गति नहीं मिलती। राम और रहीम में कोई अंतर नहीं है। तब आप लोग राम को छोड़कर रहीम को क्यों पकड़ रहे हैं? यदि आप लालच के वश होकर अपना धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं तो भूल कर रहे हैं और यदि भय से ऐसा कर रहे हैं तो पाप करते हैं। आप लोगों को मुसलमान बनाकर आपको अपने धर्म से भ्रष्ट करके ये काजी-मुल्ले आपको कुछ भी न देंगे। इन्होंने ऐसे ही झूँठा लालच देकर न जाने, कितने लोगों का धर्म-परिवर्तन किया है और बाद में अपना कोई भी वायदा पूरा नहीं किया। इन सबको न तो इस्लाम से कोई प्रेम होता है और न अनुयायियों की वृद्धि से कोई अभिरुचि। यह तो अपनी कारगुजारी दिखाकर बादशाह को खुश करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। आप सबका धर्म भ्रष्ट करके फिर कोई बात भी न पूछेंगे। आप लोग न इधर के रहेंगे और न उधर के। इसलिए अपने धर्म पर दृढ़ रहो। इन धोखेबाज मुल्ला-काजियों के चक्कर में पड़कर अपना परलोक मत बिगाड़ो और यदि डरकर आप लोग मुसलमान हो रहे हैं, तब तो महा पाप कर रहे हैं। डर तो अपना धर्म छोड़ने में है उस पर डटे रहने में नहीं। आप तो अपने धर्म पर श्रद्धापूर्वक डटे रहिए। धर्म खुद आपकी रक्षा करेगा। यदि एक बार अपने धर्म की रक्षा करने में बलिदान हो जाओगे तो सीधे स्वर्ग जाओगे। राम रहीम में कुछ भी अंतर नहीं है। फिर अपना धर्म छोड़ने की क्या जरूरत है? बोलो भाई राम रमैया की जय।

पथभ्रष्ट हिंदुओं को प्रकाश मिला और वे सब एक साथ राम रमैया की जय बोल उठे। काजी की स्थिति विषम हो गई। वह कबीर पर बरस पड़ा और बोला—"तुम मुसलमान होकर हिंदुओं का पक्ष और इस्लाम का विरोध करते हो। शरियत के मातहत तुम्हें सजा-ए-मौत मिलनी चाहिए। मैं अभी तुम्हें गिरफ्तार कराता हूँ।" ऐसा कहकर उसने अपने नौकरों से कबीर को पकड़ लेने के लिए कहा! नौकर बढ़े तभी हिंदुओं की भीड़ गरज उठी, "खबरदार जो महात्मा कबीर को हाथ भी लगाया। अभी खून की नदी बह जाएगी!" देखते-देखते ही हिंदू-मुसलमान का प्रश्न खड़ा हो गया और दंगा होने की नौबत आ गई।

कबीर सबको समझाते हुए फिर बोले—"भाइयो! मैं न हिंदू हूँ और न मुसलमान, मैं तो सबका हित चाहने वाला एक खुदा का बंदा हूँ। यह बात काजी जी को जान लेना चाहिए। मैं तो हिंदू और मुसलमान दोनों से कहता हूँ कि राम और रहीम में कोई फरक नहीं है। इसलिए दोनों जातियाँ अपने-अपने धर्म पर डटी रहें। इन मुल्ला-काजियों और पंडा-पुजारियों के बहकावे में मत आओ। यहाँ यदि किसी को कोई धर्म विवेकपूर्वक अच्छा लगे तो वह खुशी से उसमें जा सकता है दाब-धोंस अथवा लालच से नहीं। इन हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जा रहा है जो मैं किसी प्रकार भी नहीं होने दूँगा। भीड़ शांत हो गई। काजी घबराकर अपने घर भाग गया और लोग धीरे-धीरे कबीर के पीछे चल दिए। इस घटना ने कबीर को हिंदुओं के बीच पूज्य बना दिया।

दिन-रात के परिश्रम, जनता की सेवा और सामाजिक कुरीतियों से संघर्ष करते-करते कबीर अब काफी क्षीण हो गए थे। अब आयु भी उनकी ढल चुकी थी। लोई की मृत्यु ने उन्हें और भी जीर्ण बना दिया था। कमाल सयाना हो गया था। अब दोनों बाप-बेटे मिलकर काम करते थे। करघे, भजन, उपदेश और सत्संग के सारे कार्यक्रम यथावत चलते रहते।

कबीर के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। हिंदू, मुसलमान, सवर्ण, अवर्ण और अछूत सभी उनमें शामिल थे। कबीर के अनुयायियों ने

कबीर के मना करने पर भी कबीर-पंथ के नाम से एक संप्रदाय ही चला दिया! कबीर को इस संकीर्णतापूर्ण कार्य का गहरा धक्का लगा और उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया। कबीर का विराग दिन-दिन बढ़ता गया और उन्होंने जल्दी ही संसार छोड़ देने का निश्चय कर लिया।

कबीर-पंथ के विस्तार से पुरातन पंथी और मुसलमान बहुत नाराज थे। वे अब कबीर को मिटा डालना चाहते थे, पर उनकी जन-प्रियता के कारण कुछ करते न बनता था। काशीनाथ, जो कि अपने को हिंदू धर्म का ठेकदार मानता था, कोड़ों की सजा पाकर ठंढा पड़ गया था, पर काजी का दिमाग अभी नीचे न उतरा था। वह कबीर को मिटा डालने की घात में लगा रहता था। वह बादशाह सिंकदर लोदी से कबीर की शिकायत का इरादा बनाए बैठा ही था कि उसे एक अवसर मिल गया। एक यात्रा के संबंध में सिकंदर लोदी काशी की सीमा पर आया हुआ था।

www.vicharkrantibooks.org

काजी उससे मिलने गया और खूब झूँठ-सच मिलाकर उसने उससे कबीर की इस तरह शिकायत की कि सिकंदर लोदी ने यह विचार बना लिया कि कबीर हिंदुस्तान से इस्लाम धर्म और इस्लामी राज्य का खात्मा करना चाहता है। वह कबीर के खून का प्यासा बन गया। तुरंत ही उसने काशी नरेश के पास फरमान भेजकर कबीर को पकड़कर उसके हवाले कर देने का आदेश दिया।

काशी नरेश को फरमान मिला और वे विचार में पड़ गए। उन्होंने सोचा—हो न हो काजी ने बादशाह को कबीर के विरुद्ध भड़काया है। वह अवश्य ही उन्हें पाकर अपमान और अत्याचार करेगा। स्वामी रामानंद के निर्देश और अपनी श्रद्धा के साथ कबीर की महानता के कारण वे उनकी रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने फरमान के जवाब में कबीर को सिकंदर लोदी के पास भेजने के बजाए युद्ध की तैयारी करने का आदेश दे दिया, क्योंकि वे जानते थे कि अनाचारी बादशाह फरमान का पालन न होते देखकर निश्चय ही पशुता पर उतर आएगा।

कबीर को इस बात का पता चला तो वे तुरंत ही काशी नरेश के पास पहुँचे और कहा—"आप मेरे कारण युद्ध का सूत्रपात न करें। मैं स्वयं बादशाह से मिलूँगा और मालूम करूँगा कि उसने मुझे क्यों बुलाया है? काशी नरेश ने सारी संभावनाएँ बतलाते हुए कबीर को बादशाह के पास जाने से रोका, पर कबीर आग्रहपूर्वक चल ही दिए। जल्दी ही काशी भर में और उसके आस-पास यह समाचार फैल गया! हजारों की तादाद में जनता कबीर के साथ चल दी। कबीर ने समझाना चाहा, पर किसी ने न सुना। कबीर बादशाह की छावनी में गए। सैनिकों ने उन्हें बादशाह के पास पेश किया। काजी वहाँ बैठा हुआ था। बादशाह के अंगरक्षकों के मुखिया ने कहा—"कबीर! हिंदुस्तान के मालिक, बादशाह सिकंदर लोदी का आदाब बजाओ, उन्हें सलाम अदा करो।

कबीर ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया—"एक परमात्मा के सिवाय मालिक और कोई नहीं हो सकता। मैं उसी एक मालिक का बंदा हूँ और उसी को सलाम करता हूँ। मिट्टी से बने किसी इनसान को सलाम करना मेरा काम नहीं है।" कबीर का उत्तर सुनकर सिकंदर लोदी की आँखें लाल हो गईं। फिर भी वह अपने को सँभाले रहा। बोला—"कबीर! सुना है तुम इस्लाम और आज की इस्लामी हुकूमत की खिलाफत करते हो। हिंदुओं को सल्तनत के खिलाफ बगावत के लिए भड़काते हो। तुम्हारी यह हरकत कानून और मजहब दोनों की नजर में नाजायज और नाकाबिले बरदाश्त है। इसकी सजा मौत है। फिर भी मैं तुम्हें इस बार माफ करता हूँ। तुम मुसलमान हो इसलिए मौका दिया जाता है कि तुम हिंदुस्तान में मुसलमानों और मुसलमान हुकूमत के लिए काम करो। हिंदुओं में ताजा तख्त के लिए श्रद्धा पैदा करो और राज्य को बढ़ाने में हमारी मदद करो। इस बदले में तुम्हें जागीर बख्स दी जाएगी। दरबार में ओहदा अदा किया जाएगा। हमारी मेहरबानियों का फायदा उठाओ। जाओ तुम्हें रिहा किया जाता है।

कबीर ने सब सुना और बोले—"बादशाह सिकंदर लोदी! आपने कबीर को गलत समझा है। मेरा काम न तो किसी को भड़काना है और न किसी खास धर्म को बढ़ाना है। न मैं मुसलमान हूँ और न हिंदू। मैं तो उस खुदा का एक बंदा हूँ और भूले-भटके इनसानों को ठीक रास्ता बतलाना मेरा काम है। आप भी रास्ता भूले हुए हैं। इसलिए कहता हूँ तलवार के जोर पर हिंदुओं को मुसलमान बनाना छोड़कर उन्हें भी मुसलमानों के बराबर समझो और अपने नेक कामों से कोशिश करो कि उनके दिलों में आपके लिए मुहब्बत पैदा हो। अपने को मालिक समझने से पहले सारी जनता का सेवक मानो। मैं जागीर या पद नहीं आपकी भलाई चाहता हूँ। अच्छा हो आप दया, इनसाफ और ईमानदारी का नेक रास्ता अपनाएँ जिससे आपकी यह जिंदगी और भविष्य दोनों सँभल जाएँ।"

सिकंदर लोदी कबीर की स्वरोक्ति सुनकर क्रोध से पागल हो उठा, गरजकर बोला—"तो तू पूरा काफिर हो गया है। तुझे जिंदा रहने का कोई हक नहीं है। इतना कहकर सिकंदर लोदी ने आदेश दिया कि इस गुनहगार मुजरिम पर खूनी हाथी छोड़ दिया जाए।"

मीर वजीर ने जो कि सारी परिस्थिति का अध्ययन कर चुका था, समझाया—हुजूर सोच-समझकर कोई कदम उठाना है। लाखों की संख्या में जनता छावनी के चारों तरफ इकट्ठी हो गई है। काशी के राजा ने जंग की तैयारी कर दी है और आस-पास के सरहद्दी राजाओं के पास पैगाम भेज दिया है। खबर मिली है कि वे सब भी जंग की तैयारी के साथ चल पड़े हैं। कबीर हिंदू और मुसलमान दोनों को अजीज है। कोई भी सजा मिलते ही जंग की आग फूट पड़ेगी और बात की बात में खून का दरिया बह निकलेगा। सल्तनत में बगावत उठ खड़ी होगी।

तब तक सिकंदर लोदी के हुक्म की खबर छावनी के बाहर खड़ी जनता को मिल गई। एक साथ सहस्त्रों कंठ गूंज उठे। यह अन्याय है, जुल्म है। भक्त कबीर का बाल भी बाँका हुआ तो विद्रोह हो जाएगा। हम बादशाह को मिट्टी में मिला देंगे। सिकंदर लोदी ने वह घोर कठोर

आवाज सुनी, उसका कलेजा दहल उठा। अत: उसने वजीर के परामर्श पर क्षण भर विचार करके कबीर को मुक्त कर दिया। सत्य और सद्भावना की विजय हुई। वह अपार जनसमूह कबीर को भक्त कबीर की जय-जयकार करता हुआ आदरपूर्वक ले गया।

इस घटना से कबीर का यश सारे भारत में फैल गया। लोग दूर-दूर से उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने आने लगे। इसी प्रकार एक दिन आत्मा-परमात्मा का रहस्य बतलाते हुए कबीर ने सबसे कहा कि अब हंसा अपने देश जाने वाला है। मेरा वक्त और काम दोनों पूरे हो गए हैं। आप सब लोग, दिलों से हिंदू-मुसलमान, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और छोटे-बड़े का भेदभाव निकाल दें। सब एक ही राम-रहीम के बंदे हैं। आपस में मिल जुलकर प्रेम से रहें। एकदूसरे की सहायता करें और भगवान की भक्ति करते हुए नेक जिंदगी जिएँ। यही मेरा संदेश है और यही मेरा मजहब।

बाद में उन्होंने अपने पुत्र कमाल को जीवन के कर्त्तव्य समझाकर कहा— "मुझे मगहर पहुँचा दो। मैं काशी में नहीं मरना चाहता।" कमाल ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—"अब्बा! लोग तो दूर-दूर से मरने के लिए काशी आते हैं और आप काशी छोड़कर मगहर जाना चाहते हैं। सुना है काशी में मरने पर स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने पर नरक।"

कबीर हँसे और बोले—"हाँ बेटा! मैं काशी और मगहर के विषय में इस भ्रांति को दूर करना चाहता हूँ। स्वर्ग-नरक आदमी को अपने अच्छे-बुरे कामों के आधार पर मिलता है। मुझे अपने कामों की पवित्रता पर पूरा विश्वास है। मैं मगहर में मरकर भी स्वर्ग ले लूँगा।"

'का काशी का मगहर असर,
हृदय राम बस मोरा।
जो काशी तन तजइ कबीरा,
रामहिं कौन निहोरा॥

वैसे मैं न स्वर्ग में विश्वास करता हूँ और न नरक में। स्वर्ग और नरक मनुष्य की मानसिक स्थिति में निवास करते हैं। संसार में सत्कर्मों से मिलने वाली आत्मशांति स्वर्ग और पाप कर्मों से मिलने वाली यातना नरक है।

कमाल ने उनकी इच्छानुसार उन्हें मगहर पहुँचा दिया। जहाँ भक्तजनों को उपदेश देते-देते उन्होंने सुखपूर्वक एक दिन अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया। उनके हिंदू और मुसलमान दोनों अनुयायियों ने आदरपूर्वक अपने-अपने नियमानुसार उनकी अंत्येष्टि करके श्रद्धांजलि प्रदान की।

महात्मा कबीरदास के पार्थिव शरीर का अंत हुए यद्यपि पाँच सौ वर्ष हो चुके, पर उन्होंने जो ज्ञान धारा बहाई उससे आज भी करोड़ों व्यक्ति अपनी आत्मा को संतोष और शांति प्रदान कर रहे हैं। उनका मत वेदांत से मिलता है या सांख्य से अथवा उन्होंने अपने उपदेशों में योगशास्त्र का सार समाविष्ट कर दिया है, इस पर ज्यादा बहस करना बेकार है। हम इतना ही कह सकते हैं कि हिंदू शास्त्रों के आध्यात्मिक ज्ञान को उन्होंने ऐसे सीधे-सादे ढंग से प्रकट किया है कि सर्वथा अनपढ़, अशिक्षित व्यक्ति भी उसे हृदयंगम कर सकता है और सर्वव्यापी परमात्म-शक्ति के तत्त्व को समझकर अपना कल्याण कर सकता है। कबीर धार्मिक अंधविश्वास के बहुत बड़े विरोधी थे और धर्मगुरुओं द्वारा भोली जनता का शोषण किया जाना उनको बहुत बुरा जान पड़ता था। इसलिए उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों मजहबों के पेशेवर धर्मगुरुओं की कड़ी आलोचना की और जनता को उनकी ठगी से बचने की चेतावनी दी। इससे हिंदू और मुसलमान दोनों मजहबों के कितने ही 'धर्म के ठेकेदार' उनसे नाराज हो गए और तरह-तरह से हानि पहुँचाने की चेष्टा की।

कबीरदास सच्चे परमार्थी थे, वे अपने हानि-लाभ या सुख-दुःख की परवाह न करके मनुष्यमात्र के लिए स्वाभाविक धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। परिणाम यह हुआ कि छोटी कहलाने वाली जातियों के व्यक्ति भी आत्मा के शाश्वत स्वरूप और परमात्मा की निर्लेप सत्ता की वास्तविकता को समझने लगे और उन्होंने अनेक प्रकार के धार्मिक ढोंग तथा प्रपंचों से छुटकारा पा लिया।

कबीरदास स्वयं दिखावटी धर्म-कर्म, पूजा-पाठ और कर्मकांड के विरोधी थे और लोगों को सच्चरित्रता तथा नैतिकता का उपदेश देते थे। मुसलमानों से वे कहते थे कि तुम ऊँची मीनार पर चढ़कर जोर-जोर से

'आवाज' देते हो तो क्या 'खुदा' बहरा हो गया है जो इतना चिल्लाए बिना तुम्हारी प्रार्थना को सुन न सकेगा? हिंदुओं से कहते थे कि माला जपते हुए तो तुमको अनेक युग बीत चुके, पर परमात्मा का ज्ञान अभी तक नहीं हो सका, इसलिए अब लकड़ी की माला के दाने फेरने के बजाय मन की माला के दाने फेरने लगें तो तुमको अवश्य भगवान की प्राप्ति हो जाएगी, क्योंकि भगवान अंतर्यामी हैं, वह दिखावटी और वास्तविक भक्ति का भेद समझता है।

कबीर पक्के अहिंसावादी थे। किसी भी प्राणी का वध करना, उसे कष्ट पहुँचाना वे घोर पाप बतलाते थे। अपनी एक रचना में उन्होंने स्पष्ट कहा है—"ये हलाल वे झटका मारें आग दुहुन घर लागी।" इस दृष्टि से वे हिंदू-मुसलमान दोनों को समान रूप से दोषी मानते थे। जहाँ मुसलमान ईद पर भगवान के नाम पर गाय, बकरी आदि को काटते हैं, वहाँ हिंदू भी देवी के सामने प्रतिवर्ष करोड़ों बकरों, भैंसों की हत्या कर डालते हैं। एक सुधारक की निगाह में 'धर्म' का नाम लेते हुए इस प्रकार गर्हित कर्म करना सदैव निंदनीय ही माना जाएगा। कबीरदास के उपदेशों का असर समय पाकर देश में सर्वत्र फैल गया और उसके प्रभाव से अनेक संप्रदायों ने 'धर्म' के नाम पर की जाने वाली हिंसा का पूर्णरूप से त्याग कर दिया।

महात्मा कबीर के नाम पर चला हुआ उनका कबीर-पंथ अब तक चला आ रहा है और उनके बनाए भजन, गीत एवं उलटवासियों को जनता बड़ी श्रद्धा से गाती और ज्ञान पाती है। महात्मा कबीरदास का रचा साहित्य-बीजक, साखी तथा उलटवासियाँ नामक संग्रहों में उपलब्ध है। जिसकी भाषा ठेठ जनभाषा है, किंतु उसमें भरा आध्यात्मिक रहस्य किसी भी धर्मग्रंथ से कम नहीं है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।